UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182029
UNIVERSAL
LIBRARY

UP—902—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

all No. [illegible] Accession No. [illegible]

uthor [illegible]

itle [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

# प्रलय-सृजन

शिवमङ्गलसिंह सुमन

सर्वाधिकार प्रकाशकके आधीन

प्रकाशक : प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद
मुद्रक : प्रदीप प्रेस मुरादाबाद
१ ९ ४ ४

# प्राक्कथन

हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण, श्रीधर पाठक, 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्तने अपनी साधना द्वारा हिन्दी-कविताकेलिए जो मार्ग प्रशस्त किया उसीने आगे चलकर हमें पन्त, प्रसाद, निराला जैसे यशस्वी कलाकारोंको प्रदान किया; जिनकी अमर-साधनाने हिन्दी सरस्वतीको वे भाषा-भाव प्रदान किए, जिनकी अबतक उसमें भारी कमी थी। 'सुमन', इस त्रिमूर्त्तिके काव्योद्यानमें पैदा हुए श्रेष्ठ सुमनोंमें एक हैं, और शायद उनकी तरहके दो ही तीन और कवि हमारे साहित्यमें आज मौजूद हैं। कितने ही साधन-सम्पन्न तरुण कलाकारोंको अपने-अपने सामने मुरझाते देखा, हिन्दी-प्रेमियोंको इसका हमेशा खेद रहेगा; किन्तु 'सुमन' का दृष्टिकोण "परिवर्त्तन", "प्रवाह", "मृत्युके बाद जन्म" आदि इस बातकी गारंटी हैं कि अमर तरुण कवि नित्य-स्थिर-अचल अतएव सनातन-मृतमें 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के ढूँढनेकी कोशिश नहीं करेगा।

कवि-कर्मकेलिए जिन साधनोंकी आवश्यकता है, 'सुमन' के पास वे प्रचुर परिमाणमें मौजूद हैं। उनके पास व्यापक और स्पष्ट कल्पना है। त्रिमूर्त्तिकी कोमलता और लालित्य रखते भी उनकी भाषामें क्लिष्टता और कृत्रिमता नहीं है, कवि उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करता है, जो उसके अस्तित्वके अभिन्न अङ्ग बनगए हैं। भाषाकी तरह छन्दपर भी 'सुमन' का असाधारण अधिकार है।

'प्रलय-सृजन' में 'सुमन' की भिन्न-भिन्न समयमें लिखी गई कितनी ही कविताओंका संग्रह किया गया है जिनमें कविने अपने आस-पास के संसारकी अंतर्वेदनाको ही व्यक्त नहीं किया और न केवल पीड़ितोंकेलिए आँसू बहा लेने-भरसे ही संतोष करलिया है, बल्कि उस पीड़ा और दम घोंटनेवाली परिस्थितिको बदलनेका संदेश दिया है। 'सुमन' ने कहा है—

यह न वह ज्वालामुखी
जो फूट बह रह जायगा बस
यह न बड़वानल, उबल
लय सिन्धु में हो जायगा बस

मिट रहा तिल-तिल युगों से
उस हृदय की यह कहानी
वज्र निज पाषाण कर, जो
था छिपाए आग पानी

यह प्रलय उद्भ्रांत होगी
अब नहीं यह शान्त होगी
यह विषम दुनिया तुम्हारी
आज पादाक्रान्त होगी

वह कविकी शक्तिको समझता है। कविकी प्रतिभा केवल अवसादके गीतोंके गानेकेलिए नहीं है, इसीलिए वह कविको पतझड़का पत्ता नहीं वसंतकी कोकिल बननेकेलिए कहता है। 'अपने कविसे' उसने इसी बातकी आशा प्रकट की है। आजका यह विषम संसार क्यों नर्क बन गया और इसको बरबाद कर नए संसारके निर्माण करनेकी क्यों आवश्यकता है, इसका संदेश सारे संग्रहमें हमें मिलता है। गुनिया तरुणी थी, उसमें सौंदर्य और नवयौवनका समुद्र बहरहा था; किन्तु तीन ही वर्षोंमें वह सबकुछ धूल में मिलजाता है, गुनिया बूढ़ी दिखलाई देती है! कविने गुनियाके मार्मिक जीवनको चित्रित करतेहुए उस बातकी ओर भी सङ्केत किया है जिसके कारण भारतकी हज़ारों गुनिया दो ही दिनमें बूढ़ी होजाती हैं—

पर यह गुनिया समवयस, हुई
दो ही दिन में इतनी जर्जर
किसने इस हरे भरे उपवन को
आह बना डाला ऊसर

'सुमन' की कवितामें जीवन है, क्योंकि वह जीवनसे अलग नहीं भागना चाहते। हिन्दीको अपने तरुण कविका अभिमान है और वह उससे बहुत आशा रखती है।

प्रयाग
१४—८—४४

*राहुल सांकृत्यायन*

# तालिका


| | | |
|---|---|---|
| १ | संसार है संसार है ... ... ... ... | १ |
| २ | परिचय ... ... ... ... ... | २ |
| ३ | तप-त्याग चाहता है जीवन ... ... ... | ४ |
| ४ | अपने गीतों की गायिकासे ... ... ... | ५ |
| ५ | बे-घर-बार ... ... ... ... | ८ |
| ६ | अपने कविसे ... ... ... ... | १० |
| ७ | मैं चिर-व्याकुल मैं चिर-चञ्चल ... ... | १३ |
| ८ | अन्तर्द्वंद ... ... ... ... ... | १५ |
| ९ | आत्म-निर्भर ... ... ... ... | १७ |
| १० | कङ्कड़-पत्थर ... ... ... ... | १८ |
| ११ | चलरही उसकी कुदाली ... ... ... | २१ |
| १२ | गुनियाका यौवन .. ... ... ... | २४ |
| १३ | संतोष न क्या तुमको होगा ... ... ... | ३१ |
| १४ | मानका भूखा नहीं मैं प्यारकी है प्यास ... ... | ३३ |
| १५ | तपा-तपाकर कञ्चन-काया मुझको आज निखारो ... | ३५ |
| १६ | सूरज ढलरहा है ... ... .. ... | ३६ |
| १७ | अपने मनसे—(एक) ... ... ... | ३७ |

१८ अपने मनसे—( दो ) ... ... ... ३८
१९ अपने मनसे--(तीन) ... ... ... ३९
२० सावनके बादल ... ... ... ... ४१
२१ आभार ... ... ... ... ... ४४
२२ नाविकसे ... ... ... ... ... ४६
२३ स्व० रवीन्द्रके प्रति ... ... ... ४८
२४ स्व० पढ़ीसजीकी स्मृतिमें ... ... ... ५०
२५ जीवन और गीत ... ... ... ... ५२
२६ परीक्षा दो ... ... ... ... ५५
२७ सोवियत रूसके प्रति ... ... ... ५८
२८ मॉस्को अब भी दूर है ... ... ... ६२
२९ स्तालिनग्रेद ... ... ... ... ७०
३० लालसेना ... ... ... ... ७३
३१ कलकत्तेका अकाल—१९४३ .. ... ७५
३२ फिरभी मेरा विश्वास अटल ... ... ... ८४
३३ गानेको अभी अवशेष .... ... ... ८५

---

## संसार है संसार है

◆ ◆

मिट्टी मिली, पानी मिला
धरती हँसी, अंकुर खिला
जीवन मिला, जीवन मिला

बीते हुए इतिहास पर
रोना यहाँ अच्छा नहीं
संसार है, संसार है

( २ )

सबके हृदय में शूल है
सबके पगों में धूल है
रुकना यहाँ पर भूल है

पथ पर कहीं विश्रामहित
सोना यहाँ अच्छा नहीं
संसार है, संसार है

( ३ )

सन्मुख प्रलय का पथ पड़ा
तूफ़ान भी आकर अड़ा
यह सोचकर ही मैं बढ़ा

निर्माण का अवसर मिला
खोना इसे अच्छा नहीं
संसार है, संसार है

◆ ◆

## परिचय

•

मैं मानव-उर का निर्झर हूँ बहना ही मेरा काम यहाँ

मेरी लघुता पर हिमगिरि की
सारी गुरुता शरमा जाती
जीवन है गतिमय तरल सरल
पाषाणों की मेरी छाती
मेरे पथ के उत्थान पतन
भर देते मुझमें वेग प्रबल
झंझा अपनी झकझोरों से
मेरी पीड़ा सहला जाती

क्या दूँ अपना अनुभव जग को केवल इतना-सा ज्ञान मुझे

कल-कल ध्वनि से पथ की बातें कहना ही मेरा काम यहाँ
मैं मानव-उर का निर्झर हूँ बहना ही मेरा काम यहाँ

२

यों देख मुझे बढ़ते, मेरी
क़िस्मत ही निर्मम क्रूर हुई
रोड़े अटकाए, पर आख़िर
उसकी भी शेख़ी धूर हुई
मेरी इस सहनशीलता पर
हिमधर का हृदय पसीज उठा
उन्नत कगार, बन बीहड़,
चट्टानों की काया चूर हुई

अवरुद्ध साँस घुटने पर भी चलने से बाज़ नहीं आया

सुख दुख की चोट चपेटों को सहना ही मेरा काम यहाँ
मैं मानव - उर का निर्झर हूँ बहना ही मेरा काम यहाँ

३

मैं देख रहा हूँ रवि, शशि, उडु
हो पाते हैं थिर कभी नहीं
मैं देख रहा ऊषा, सन्ध्या,
झंझाएँ रुकतीं कभी नहीं
जीवन के कण - कण में गति है
जीवन के अणु - अणु में गति है
मानव - जीवन के चिर - साथी
सुख - दुख भी टिकते कभी नहीं

संसृति है, आखिर सृति - हीनों का हो सकता अस्तित्व कहाँ ?

जो पथ पर बैठा वही मिटा चलने वालो का नाम यहाँ
मैं मानव उर का निर्झर हूँ बहना ही मेरा काम यहाँ

४

मुझको विश्राम नहीं लेना
बढ़ता जाता आँखें मीचे
नीला - सा आसमान सर पर
रूखी सूखी धरती नीचे
अपने अन्तर के सरस गान
पथ पर बिखेरता जाता हूँ,
बस इसी तरह कुछ मुरझाए
सूखे जीवन मैंने सींचे

तट की हरियाली देख देख ही समझा अपना जन्म सफल

आगे सागर की सत्ता में लय होजाना विश्राम यहाँ
मैं मानव - उर का निर्झर हूँ बहना ही मेरा काम यहाँ

◆ ◆

## तप-त्याग चाहता है जीवन

◆ ◆ ◆

प्रणयी को प्रिय की स्मृति में ही
रह रह कर मिटना पड़ता है
विश्वास, विरह की वेदी पर
तपसी सा तपना पड़ता है
हाँ, इसी लिए जीने भर को अनुराग चाहता है जीवन
तप - त्याग चाहता है जीवन

जग का आतप शीतल करने
नद - निर्झर झरते रहते हैं
मानव की सीमित काया से
नयनों के सोते ढरते हैं
प्राणों का आतप क्षीण न हो, वह आग चाहता है जीवन
तप - त्याग चाहता है जीवन

घातक समाज में मानवता
जब लुप्तप्राय हो जाती है
बेकस, असहाय निरीहों की
जब हाय हाय छा जाती है
मानवता का स्वर ऊँचा हो वह राग चाहता है जीवन
तप - त्याग चाहता है जीवन

व्यापक समष्टि चेतनता का
है एक अंश मानव - जीवन
अपनी अपूर्णता से विह्वल
आकर्षित जीवन के कण कण
बलिदान पूर्णता हित जो हो वह भाग चाहता है जीवन
तप - त्याग चाहता है जीवन

◆ ◆

## अपने गीतों की गायिका से

आज मेरे गीत, ओ स्वरसाधिके ! तुम गा सकोगी ?

कण्ठ में कंपन नहीं अब
मौन हैं मेरे प्रणय स्वर
वेदना अपनी सुनाता
आज केवल आह भर भर
वेदना भी वह नहीं जो
एक ही उर की व्यथा हो
एक शून्य प्रकोष्ठ में
सिसकी भरी सीमित कथा हो
यह कहानी सिन्धु बल की
यह कहानी हिम अटल की
यह कहानी है अनिल की
यह कहानी है अनल की
विप्लवी मेरे हृदय का मूल्य आज लगा सकोगी ?
आज मेरे गीत, ओ स्वरसाधिके ! तुम गा सकोगी ?

आज अपनी ही व्यथा से
हो उठा संसार विचलित
देख रौद्र स्वरूप, भीष्म
प्रचण्ड झंझानल प्रकंपित
आज सुर मुनि किन्नरों के
गान-स्वर हैं शून्य में लय
गूँजते रह रह विशद चीत्कार
हा हा कार निर्भय
यह विकट आराधना है
यह युगों की साधना है

## बे-घरबार

( १ )

यह मई जून के तप्त दिवस
है अर्द्ध-रात्रि का प्रथम प्रहर
जगमगा रही नीली हलकी
रोशनी भव्य प्रासादों पर

( २ )

आरही दूर चौमहले से
मञ्जीर नूपुरों की खन-खन
महमहा रही खस की टट्टी
बिजली के पङ्खों की सन-सन

( ३ )

बिक रहा पूत नारीत्व जहाँ
चाँदी के थोथे टुकड़ों में
कर्त्तव्य पालता धनिक वर्ग
मदिरा के जूठे चुकड़ो में

( ४ )

इस ओर पड़ीं खाना-बदोश
मेहनतकश मानव की पाँतें
फुट पाथों की चट्टानों पर
जो काट रहीं अपनी रातें

( ५ )

रक्षित है लाज लँगोटी पर
हैं कण्ठ बोलते घरर घरर
आरही असह दुर्गन्ध पसीने
और चीथड़ों से झर - झर

( ६ )

कुछ दमा तपेदिक से बेदम
कुछ खाँस रहे हैं पड़े-पड़े
सम्पत्ति फटी मिरजँई और
अधजली बीड़ियों के टुकड़े

( ७ )

क्या जीवन ! जिनकी मुरझाईं
मन की मन में सारी चाहें
फावड़े चलाते सूख गईं
आलिंगन को प्यासी बाहें

( ८ )

फटता है क्यों आकाश नहीं
सुनकर इनकी कर्कश कराह
कुत्ते से बदतर मौत मिली
यह किस स्वदेश के गर्व छाह

( ९ )

पैदा कर माँ ने जीवन में
समझा कुछ उजियाला होगा
कितनी मनुहार दुलारों से
ललुआ कहकर पाला होगा

( १० )

सोई हैं उनकी आशाएँ
कङ्कड़-पत्थर पर आज विवश
गिर पड़े गाज प्रासादों पर
ढहजाएँ समुन्नत स्वर्ण कलश

◆ ◆

## अपने कवि से

• •

इस जीर्ण जगत के पतझर में
अभिशप्त तुम्हारा कवि - जीवन

तुम मध्यवर्ग के पोषित शिशु
अपने सपने ले खड़े रहे
पर वे सपने युग की गति में
क्षण में डगमग हो ढहे बहे
तुम रोए यह अन्याय हुआ
मेरे प्रति दुनियावालों का
देखा भी नहीं कि कितनों ने
तुमसे भीषण आघात सहे
मुख से न आह तक निकल सकी शिकवा न किया अपनों से भी
कातर अन्तर, बोझिल पलकें
ले किया जगत का अभिनन्दन
इस जीर्ण जगत के पतझर में
अभिशप्त तुम्हारा कवि - जीवन

( २ )

युग बढ़ा, दिए दो डग आगे
काँपी धरणी, सिहरा अम्बर
उगले हिमगिरि ने अंगारे
उन्नत प्रासाद हुए खँडहर
तुम भी वातायन से झाँके
बोले कोरी भौतिकता है
अपनी कायरता - वश, कल्पित—
स्वप्नों में लीन हुए सत्वर
हड्डी थी मज्जाहीन हुई था खून रगों में शेष कहाँ ?

तुमने निज पदतल की मिट्टी
ली चूम, किया सस्मित वन्दन
इस जीर्ण जगत के पतझर में
अभिशप्त तुम्हारा कवि - जीवन

( ३ )

बढ़ गया कारवाँ मंज़िल पर
तुम रहे सरायों में अटके
सुधबुध विहीन मदिरालय के
प्यालों को पीते बेखटके
जब होश हुआ तब चिल्लाए
मैं भी तो युगका प्रतिनिधि हूँ
पर टूट चुका था तब तक तो
सम्बन्ध - सूत्र खा कर झटके
फिर क्या था तुमने अपने को, दुनिया को, जीवन को कोसा
गुंजित कर डाला सूना पथ
निज निर्बल स्वर में भर क्रन्दन
इस जीर्ण जगत के पतझर में
अभिशप्त तुम्हारा कवि जीवन

( ४ )

इस ओर असंख्य अभागों की
टोली थी दल बल साज रही
उस ओर स्वार्थ सत्ताधारी
सबलों पर भीषण गाज ढही
पर तुम अपने अभिसारों में
गिनते थे तारों की पलकें
चुल्लू - भर पानी में मरते
थी लोक लाज भी शेष नहीं
आश्चर्य्य, तुम्हारे सरस कर्ण सुन पाए हाहाकार नहीं
हो गए बधिर जब बलिदानी
निकला पथ से करता झनझन

इस जीर्ण जगत के पतझर में
अभिशप्त तुम्हारा कवि - जीवन

( ५ )

सोचो, नवयुग अरुणोदय में
सन्ध्या रागिनी किसे रुचती
थोथी कल्पना तुम्हारी यह
क्या सत्य कसौटी पर कसती
यह क्षितिज पार के स्वर्णस्वप्न
यह कला अछूती उपचेतन
कैसे जग को अपना सकती
कैसे उसके मन को जँचती
था यहाँ प्रलय का आवाहन था निर्माणों का पुण्य - प्रहर
तुम बीते युग की करुण कथा
गाते थे बन बन चिर - उन्मन
इस जीर्ण जगत के पतझर में
अभिशप्त तुम्हारा कवि - जीवन

( ६ )

ऊपर पूँजीवादी समाज
नीचे शोषित जनता का स्वर
तुम आँखें ऊपर कर चलते
मिट्टी जाती है खिसक इधर
इस तरह प्रतिक्रिया और क्रान्ति
दोनों के बीच त्रिशंकु बने
तुम बना मिटाया करते हो
अपनी आशाओं के खँडहर
अपने ही अंतर का जाला बुन बुन कर चारों ओर, विवश
अपनी ही असफलताओं से
भर भर जग जीवन का आँगन
इस जीर्ण जगत के पतझर में
अभिशप्त तुम्हारा कवि - जीवन

◆ ◆

## मैं चिर-व्याकुल मैं चिर-चंचल

• • •

( १ )

कल पने सूनेपन पर मैं
रोया था जी भर एक प्रहर
पर जग की हाहाकारों में
कोई न सुन सका मेरे स्वर
अपनी ही प्रतिध्वनियाँ सुन सुन फिर मेरा अन्तर आज विकल
मैं चिर-व्याकुल, मैं चिर-चञ्चल

( २ )

पग नाप चुके सारी पृथ्वी
दृग नाप चुके सारा अम्बर
अपने उर की गहराई से
मैं थहा चुका सातों सागर
फिर भी जीवन का स्वर न मिला, फिर भी न मिला पथ का संबल
मैं चिर-व्याकुल, मैं चिर-चञ्चल

( ३ )

मैं चूम चुका मधुबाला के
सौरभ सुरभित मधुसिक्त अधर
मैं ने पी डाले शीतलतम
अगणित सागर सरिता निर्झर
फिर भी न बुझा पाया किंचित, अपने प्राणों की प्यास प्रबल
मैं चिर-व्याकुल, मैं चिर-चंचल

( ४ )

तूफ़ान बवंडर में पड़कर
मैं भूल गया रोना धोना
रवि के रथ पर चढ़ घूमचुका
मैं दुनिया का कोना कोना

पर पग पग पर मैं ने देखी, जन - जीवन की व्याकुल हलचल
मैं चिर व्याकुल, मैं चिर - चञ्चल

( ५ )

मैं ने देखा है मानव को
करते दानवता का अभिनय
उसकी आँखों में अङ्गारे
उसकी वाणी में एक प्रलय
मैं ने उसके उर - उपवन में, सुलगा देखा है दावानल
मैं चिर व्याकुल, मैं चिर चञ्चल

( ६ )

मैं सोच रहा क्या भूल गया
वह अपने कल्पित सपने को ?
क्या भूल गया वह अपनापन
क्या भूल गया वह अपने को ?
क्या और कभी संसार हुआ, इतना विपाक्त, सङ्कट - संकुल
मैं चिर - व्याकुल, मैं चिर - चञ्चल

( ७ )

मैं जिस जीवन का एक अङ्ग
उसका यह कैसा घोर पतन ?
मेरी स्वर्णिम आशाओं पर
किस शाप तमिश्रा का नर्तन ?
क्या भस्ममात होगी जगती, अपनी ही ज्वाला में जल जल ?
मैं चिर - व्याकुल, मैं चिर - चञ्चल

( ८ )

कुछ नहीं समझ में आता है
क्या चेतन जग फिर होगा जड़ ?
जिसने अपने ही आँसू से
कर दी पथ पर फिसलन कीचड़
पग जिसमें धँसते जाते हैं, उसकी ही निर्मित वह दलदल
मैं चिर - व्याकुल, मैं चिर - चञ्चल

◆ ◆

## अन्तर्द्वन्द

•

( १ )

घेरे है चारों ओर मुझे
मेरी सीमा की आकुलना
तन मन बन्धन में जकड़े से
पग पग पर बिखरी असफलता
जीवन क्या है ? क्यों मिला मुझे ?
यह प्रश्न उठा ही करता है
हँस हँस पड़ती है बार बार
मुझ पर मेरी ही चञ्चलता
फिर भी मैं मस्तक उन्नत कर
पग आगे धरता जाता हूँ
मैं ने मानव - तन पाया है
मैं सुख दुख आघातों को
हँसते हँसते ही सह लूँगा

( २ )

मैं कर उठता हूँ रुदन, किन्तु
सुन पाता स्वर न स्वयं अपना
मेरी तन मन की अभिलाषा
बन जाती है कल्पित सपना
फिर सोचा करता आखिर इस
रोने से आना जाना क्या ?
जीवन गति है होगा चलना
जीवन तप है होगा तपना
यह हाय व्यर्थ की तो केवल
मेरे मन की कायरता है
मैं ने मुखरित मन पाया है

मैं अपने मन के भावों को
गाते गाते ही कह लूँगा

( ३ )

मैं बढ़ता हूँ बढ़ जाता है
जैसे निर्झर का खर प्रवाह
मैं लहराता हूँ, लहराता
जैसे अस्थिर अम्बुधि अगाध
अपने को पूर्ण बनाने की
मैं टोह लगाता चलता हूँ
व्यापक जीवन का व्याप्त रूप
बनने की मेरी एक साध
अब तक तो बड़े बड़े भूधर
कर पाए पथ अवरुद्ध नहीं
मैं ने गतिमय जीवन पाया
मैं ऊबड़ खाबड़ राहों में
कल कल छल छल कर बह लूँगा

( ४ )

मैं ने केवल जाना, मानव
उन्नत जीवन का श्रेष्ठ मान
उसके ही कण्ठों से निसृत
भावी समृद्धि के अनल गान
यह स्वर्ग नर्क यह पाप पुण्य
उसके ही हाथों की रचना
वह कर्त्ता हर्त्ता स्वयं उसे क्या
सृष्टि प्रलय माना पमान
तब तक कैसे मिल पाएगी
जीवन पथ पर चिर - शान्ति मुझे
जैसे मानव को रहना है
वैसे ही मानव बनकर मैं
जब तक जीवन में रह लूँगा

◆ ◆

## आत्म-निर्भर

◆ ◆

( १ )

चिर अतृप्ति मानव का संबल
जीवन प्रश्न चिरन्तन
जन्म-मरण सङ्केत समय के
भावी पट परिवर्तन
बनना मिटना क्रम इस पथ का
जीवन चलते रहना
कर्म-भूमि है यहाँ मिटा अपने को जीना होगा

( २ )

बुरा नहीं है यहाँ किसी
डाली पर नीड़ बसाना
नेह लगाना बड़ा सरल है
होता कठिन निभाना
बड़ी भूल है व्यथित हृदय की
हाय सुनाते फिरना
अपने ही हाथों अपने घावों को सीना होगा

( ३ )

पथ का मेल-जोल अच्छा है
बुरा बढ़ाना परिचय
यहाँ किसे अवकाश करे जो
स्मिति आँसू का विनिमय
निर्बलता है प्यास - प्यास
चिल्लाकर हाथ बढ़ाना
अपने हाथों कुआ खोदकर पानी पीना होगा

◆ ◆

## कंकड़-पत्थर

• •

मैं पथ का कङ्कड़ पत्थर हूँ

जानें किस शिल्पी की टाँकी से
टकराकर मैं चूर हुआ
अपने विशाल गिरि गृह कुटुम्ब से
छिन्न - भिन्न हो दूर हुआ

आ पहुँचा मानव बस्ती में
चिर - परिचय - हीन प्रवासी सा
पग - पग पर ठोकर पर ठोकर
खाने को मैं मजबूर हुआ

तुम पूछ रहे मेरा परिचय
तुम पूछ रहे मेरा निश्चय
मैं क्या जानूँ इस जगती में
अभिशाप रूप हूँ या वर हूँ
मैं पथ का कङ्कड़ पत्थर हूँ

(२)

आँखों के रहते भी अन्धे
आकर मुझसे टकरा जाते
गर्वित निज बल की क्षमता में
दो लातें और जमा जाते

मैं लुढ़क पुढ़क टकटकी बाँध
परखा करता उनकी क़ीमत

जग को मुझ ऐसे दीन - हीन
फूटी आँखों भी कब भाते

वे नहीं जानते मेरे भी
दिन थे मैं था चैतन्य कभी
चेतनता के उपहास रूप
अब भावी जड़ता का स्वर हूँ
मैं पथ का कङ्कड़ पत्थर हूँ

( ३ )

चेतन जग का कोई प्राणी
मुझ -'सा बेबस लाचार नहीं
अपना सुख - दुख तक कहने को
मेरा कोई संसार नहीं

आहें भर सकता तो अपनी
निश्वासों से जग भर देता
पर मुझे साँस तक लेने का
मिल पाया है अधिकार नहीं

मैं पद - लुंठित पद - मर्दित बन
आया हूँ जीवन के पथ पर
परवश अपनी सीमाओं में
मैं मूक व्यथाओं का घर हूँ
मैं पथ का कङ्कड़ पत्थर हूँ

( ४ )

चिर - स्पन्दन - हीन हुआ जब से
बेसुध सा कोमल मन मेरा
पड़ जीवन के संघर्षों में
घिसता जाता है तन मेरा

भूले भटके भी हाय, तरस
खाने वाला कोई न मिला
चिर - व्यथित उपेक्षित विरही-सा
सूने में लय जीवन मेरा

मैं कहूँ कहाँ तक सुनने को
गाथा कोई तय्यार नहीं
मैं इस शोषण की जगती में
जर्जर समाज का नत - शिर हूँ
मैं पथ का कंकड़ पत्थर हूँ

(५)

पर मैंने कल पथ पर देखी
पद - दलित मानवों की टोली
थी जिनकी आह कराहों में
मेरी परवशता की बोली

उनकी भी हाहाकारों पर
देता था कोई ध्यान नहीं
अपने सूखे जर्जर तन में
लगते थे मेरे हम - जोली

जीवन में पहले पहल मुझे
अपनों पर कुछ कुछ गर्व हुआ
मैं जड़ होकर भी इन चेतन
नर - कंकालों से बढ़ कर हूँ
मैं पथ का कंकड़ पत्थर हूँ

◆ ◆

## चल रही उसकी कुदाली

• . •

[ जेठ की जलती दुपहरी में एक किसान को खेत गोड़ते देखकर ]

हाथ हैं दोनों सधे से
गीत प्राणों के रुँधे से
और उसकी मूठ में, विश्वास
जीवन के बँधे से
धकधकाती धरणि थर थर
उगलता अंगार अम्बर
भुन रहे तलुवे, तपस्वी-सा
खड़ा वह आज तन कर
शून्य सा मन, चूर है तन
पर न जाता वार खाली
चल रही उसकी कुदाली

( २ )

वह सुखाता खून पर-हित
वाह रे साहस अपरिमित
युगयुगों से वह खड़ा है
विश्व-वैभव से अपरिचित
जल रहा संसार धू धू
कर रहा वह वार कह 'हूँ'
साथ में समवेदना के
स्वेद कण पड़ते कभी चू
कौन सा लालच ? धरा की
शुष्क छाती फाड़ डाली
चल रही उसकी कुदाली

( ३ )

लहलहाते दूर तरु-गण

ले रहे आश्रय पथिक जन
सभ्य शिष्ट समाज खम की
मधुरिमा में है मगन मन
सब सरसता रख किनारे
भीम श्याम शरीर धारे
खोदता तिल तिल धरा वह,
किस शुभाशा के सहारे ?
किस सुवर्ण भविष्य के हित
यह जवानी बेच डाली ?
चल रही उसकी कुदाली

( ४ )

शांत सुस्थिर हो गया वह
क्या स्वयं में खो गया वह
हाँफ कर फिर पोंछ मस्तक
एकटक - सा रह गया वह
आ रहो वह खोल झांटा
एक पुटली, एक लोटा
थूँक सुरती पोंछ डाला
शीघ्र अपना हांठ मांटा
एक क्षण पिचके कपोलों में
गई कुछ दौड़ लाली
चल रही उसकी कुदाली

( ५ )

बैठ जा तू क्यों खड़ी है
क्यों नज़र तेरी गड़ी है
आह सुखिया, आज की रोटी
बनी मीठी बड़ी है
क्या मिलाया सत्य कह री !
बोल क्या हो गई बहरी ?
देखना, भगवान चाहेगा
उगेगो खूब जुन्हरी

फिर मिला हम नोन-मिरचा
भर सकेंगे पेट खाली
चल रही उसकी कुदाल

( ६ )

आँख उसने भी उठाई
कुछ तनी, कुछ मुसकराई
रो रहा होगा लखनवा
भूख से, कह बड़बड़ाई
हँस दिया दे एक हूँठा
थी बनावट, था न रूठा
याद आई काम की, पकड़ा
कुदाली, काष्ठ-मूठा
खप्प-खप चलने लगी
चिर-संगिनी की होड़ वाली
चल रही उसकी कुदाली

( ७ )

भूमि से रण ठन गया है
वक्ष उसका तन गया है
सोचता मैं, देव अथवा
यन्त्र मानव बन गया है
शक्ति पर सोचो ज़रा तो
खोदता सारी धरा जो
बाहुबल से कर रहा है
इस धरणि को उर्वरा जो
लाल आँखें, खून पानी
यह प्रलय की ही निशानी
नेत्र अपना तीसरा क्या
खोलने की आज ठानी
क्या गया वह जान
शोषक-वर्ग की करतूत काली
चल रही उसकी कुदाली

◆ ◆

## गुनिया का यौवन

• •

ग्रीष्मावकाश के थे वे दिन
मैं गया हुआ था अपने घर
कालिज की विषम पढ़ाई से
पाने को कुछ विश्राम प्रहर

मैं एक ग्रामवासी, परिचित
खलिहान, खेत, टीले, ऊसर
अमराई और जीर्ण पनघट
मेरी स्मृति के हैं चिह्न अमर

वह जगत कुएँ की आज तलक
परिचित मुझसे रत्ती - रत्ती
परिचित अमराई का कण - कण
शाखा - शाखा पत्ती - पत्ती

मेरे घर के दाहिनी ओर
है बसी अहीरों की बस्ती
युग बीत गए, बदला जीवन
पर शेष अभी उनकी मस्ती

हैं घास - फूस के घर उनके
दरवाज़े चौपाए बँधते
दिन चढ़े जहाँ गोरे हाथों
मथनी मथती, कंडे पथते

उनमें गोकुल के संस्कार
गायों भैंसों का सुखद सङ्ग

ईर्षा होती है देख - देख
वे दूध दही से बने अङ्ग

अब भी विह्वल कर देती मन
उनके विरहा की एक तान
जिसमें मुखरित जन जीवन के
सुख दुख वियोग संयोग - गान

होता प्रभात कुछ चने बाँध
चलते लाठी से हाँक ढोर
फिर दिन भर नापा ही करते
बन बीहड़ सरिता - तट अछोर

होती सन्ध्या ढँकते दिगन्त
उनके चरणों की धूल चूम
ग्वालिनियाँ कटि सिर पर घट धर
चल पड़तीं हँस हँस झूम झूम

चूनरी लाल, नीला लहँगा
बिखरे कुन्तल, सहमे उरोज
किस चपल कन्हैया को उनकी
कजरारी आँखें रहीं खोज

गृह - पथ वृन्दाबन बनता जब
कानों तक तनते नयन - बाण
विरला ही होगा, भाग्यहीन
मन विद्ध न जिसके मुग्ध प्राण

मैं बैठा देखा करता था
पनघट पर उनकी लगी भीड़
मन का पंछी खोजा करता था
वहीं कहीं अपना सुनीड़

वह भी उन सबसी चञ्चल थी
नटखटपन से सब भरे काम
अञ्चल सरकाना, मुसकाना
गिरता घट लेना थाम थाम

मिल गई मुझे मेरी सुषमा
सावन की नव - हरियाली - सी
क्या कहूँ कि गुनिया नटखट थी?
या कहूँ कि भोली - भाली - सी

थे यौवन की चढ़ती के दिन
आशा उमङ्ग से हृदय भरा
मैं तो सावन का अन्धा था
सब मुझे सूझता हरा - हरा

पर इन सब बातों को बीते
हो चुके हैं आज तीन वर्ष
मैं आज लौट कर आया हूँ
उर में नूतन उत्साह हर्ष

धोती तौलिया लिए अपनी
कुइयाँ पर आकर हुआ खड़ा
देखा कोई अहिरिनि आती
हाथों में छूँछा लिए घड़ा

मैं गगरे की गरदन में फंदा
डाल रहा था झुका - झुका
पद चाप पड़ गई धीमी सी
मेरा मन भी कुछ रहा रुका

"अच्छे तौ मलिकौ रह्यो" कहा
उसने मैंने फिर फिरकर देखा

वह कौन ? आह गुनिया ही थी
मेरी स्मृति की धुँधली रेखा

"हाँ अच्छा हूँ, तुम नोकी तना रह्यू"
मैं भू ला - सा बो ला
वह हँस कर ही रह गई
हवा से पेड़ नीम का भी डोला

वह हँसी आह, वह कैसी थी
मेरा तो अन्तर गया काँप
उसके मानस की गहराई
मेरी आँखें कब सकीं नाप ?

ढीला पीला अधखुला अङ्ग
मुँह पर चिट्टे, फैली झाँईं
आँखें गड्ढों में धँसी और
सिकुड़न - सी कहीं - कहीं छाई

अब दो बच्चों की माँ थी वह
था भार गृहस्थी का उस पर
अब रङ्ग बिरङ्गी दुनिया से
उसका मन जाता नहीं सिहर

फिर एक यन्त्र-सी मुसकाकर
वह लगी घड़ा अपना भरने
मैं बोला "लाओ मैं भर दूँ"
वह हँसी कहा "तुम दो रहने"

फिर घड़ा उठा, गेडुरी पर धर
पलभर देखा मुझको अपलक
कुछ कहा नहीं पर मेरा मन
पा गया हृदय की एक झलक

उस मुखड़ सलोने मुखड़े पर
अङ्कित थे कितने भाव नए
जो नहीं आजतक सुने गए
जो नहीं आजतक लिखे गए

छाई आँखों में चकाचौंध
जैसे नभ का तारा टूटा
मैं रहा सोचता किस निर्मम
विधि ने इसका यौवन लूटा

मुझमें तो अब भी यौवन है
अब भी अङ्गों में एक पुलक
अब भी अधरों में अरुणाई
अब भी पुतली में एक चमक

अबभी कंपित कुचकलश देख
आँखे जाती हैं फिसल फिसल
अब भी आलिंगन चावपूर्ण
मेरा मन हो उठता चञ्चल

पर यह गुनिया समवयस, हुई
दो ही दिन में इतनी जर्जर
किसने इस हरे भरे उपवन को
आह बना डाला ऊसर

बीती की अगणित मधु-घड़ियाँ
मेरी चल-पलकें चूम गईं
क्षणभर में मेरे मस्तक में
सौ सौ स्मृतियाँ घूम गईं

वह घड़ा खींचते समय याद
आई पनघट की प्रथम चुहल

रस्सी छूटी तो घड़ा गिरा
रह गई विवश, उर में हलचल

जब धीरे से पानी उछाल
गीली कर डाली थी चुनरी
जब सर से सरका था अञ्चल
जब छलकी थी मधु की गगरी

"तुम बड़े ढीठ हो अब तुम्हरी
कुइयाँ मा हम पानी न भरब"
पर चढ़ी उमर में अपना मन
अपने बस में रहता है कब ?

आगई याद अमराई भी
यौवन के पथ पर प्रथम चरण
जब आम लूटने के मिस
अधरों से अधरों का हुआ मिलन

जब भौंहें तान मुझे गाली
देकर फिर हँसकर भागी थी
मेरी माँ से कह देने की
जब मीठी सी धमकी दी थी

जब पहले पहले जाना था
यौवन में भी होता है रस
जब जाना अधगदरी अँबियों
से उठे उरोजों का सुपरस

उसके हित आम झोरने में
मेरी तो बन जाती थी गत
मैं आज बताऊँ भी कैसे
वह यौवन था या थी आफ़त

फिर छाँट छाँट मीठे मीठे
झोली के आम खिलाए थे
जब हँसी हँसी में हम अपने
मन का रहस्य कह पाए थे

जब फूटी पड़ती थी उसके
गुदकारे गालों से लाली
जब उसे देख बौराई-सी
फिरती थी कोयल मतवाली

जब उड़ा ओढ़न मलयज भी
पल में कृतार्थ होजाता था
जब उभरे अङ्गों को छूने
सावन घन घिर घिर आता था

जब मुसकाने में उमा, हँसी में
ज्योत्स्ना, पुलकों में बसन्त
अलसाई आँखों में सन्ध्या
आलिंगन में सीमित अनन्त

वे दिन सपने से गए कहाँ ?
यौवन जीवन से गया हार
यौवन ग़रीब का दो क्षण का
सन्ध्या के लेकिन पल अपार

मैं आज जारहा उन्मत्त-सा
माँ की गोदी का छोड़ प्यार
वह पथ पर फिर मिल गई
कहा—"चल दीन्यो का ? मलिकौ जुहार।"

◆ ◆

## सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

• • •

( १ )

जब कभी सुनोगी उफ़ न किया
मैंने पथ पर तिल - तिल मिटते
कर्तव्य मार्ग पर अटल रहा
नित नाम तुम्हारा ही रटते
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

( २ )

जब कभी सुनोगी, सूने में
मैंने तुम पर अभिमान किया
गीतों में पद - दलितों की ही
पीड़ा का मैंने गान किया
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

( ३ )

जब कभी सुनोगी, दीनों
दुखियों का मैंने सम्मान किया
मधुस्मृतियों को मानवता की
बलिवेदी पर बलिदान किया
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

( ४ )

जब कभी सुनोगी स्वयं जला
पर शीतलता का दान किया

जग को अमृत दे, हालाहलका
हँसकर मैंने पान किया
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

( ५ )

जब कभी सुनोगी, हँसा किया
जग - ज्वाला में जलते - जलते
पीछे को क़दम नहीं रक्खा
अन्तिम साँसें चलते - चलते
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

( ६ )

जब कभी सुनोगी पर - पीड़ा हित
निजता को निःशेष किया
निज दीन - देश के सङ्कट में
मैंने सैनिक का वेष किया
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

( ७ )

जब कभी सुनोगी घायल
लथपथ समर-भूमि में पड़ा रहा
अपना ही रक्त स्वयं पीता
मैं आन बान पर अड़ा रहा
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

( ८ )

जब कभी सुनोगी, मेरे प्राणों
की क़ीमत आज़ादी थी
इस क्रान्ति - यज्ञ में इसीलिए
मैंने अपनी आहुति दी थी
सन्तोष न क्या तुमको होगा ?

◆ ◆

## मान का भूखा नहीं मैं, प्यार की है प्यास

• • •

( १ )

यह कभी सोचा न मैं ने
बस सके घर द्वार
आग सा जीवन जले
हो एक पल में क्षार
विकल तन मन, विकल जीवन, मैं न आज उदास
मान का भूखा नहीं मैं, प्यार की है प्यास

( २ )

ठहरने की सोचता क्यों
नाम था संसार
सत्य मिटना इसलिए
मिट मिट किया व्यापार
ज्ञान की चिन्ता न मुझ को ध्यान पर विश्वास
मान का भूखा नहीं मैं, प्यार की है प्यास

( ३ )

मैं बढ़ा बढ़ना हमारी
ज़िन्दगी का काम
मैं चला, चलना मनुज-
अस्तित्व का है नाम
छूट जो पथ पर गए मैं एक उनकी आश
मान का भूखा नहीं मैं, प्यार की है प्यास

( ४ )

मैं विवादों में न पड़ता
लोक क्या परलोक
जानता हूँ मृत्यु भी
मुझ को न सकती रोक

साधना - पथ पर रहा कर मृत्यु का उपहास
मान का भूखा नहीं मैं, प्यार की है प्यास

( ५ )

आत्म हत्या कर रहा जग
भर रहा निश्वास
खोजता तम पूर्ण पथ पर
मैं प्रशान्त प्रकाश

सतत अन्वेषण हृदय में, मैं न आज निराश
मान का भूखा नहीं मैं, प्यार को है प्यास

( ६ )

सार्थक कण कण यहाँ पर
यह समय का साज
थी ज़रूरत इस लिए ही
मैं यहाँ पर आज

सुन रहा हूँ ध्यान से, मैं स्वयं अपनी साँस
मान का भूखा नहीं मैं, प्यार की है प्यास

( ७ )

एक अद्‌भुत शक्ति जीवन में
भ री ग ति पू र्ण
विघ्न बाधा क शिलाएँ
हो रही हैं चूर्ण

हो नहीं सकता कभी चैतन्यता का ह्रास
मान का भूखा नहीं मैं, प्यार की है प्यास

◆ ◆

## तपा-तपा कर कंचन-काया मुझको आज निखारो

• • •

( १ )

बड़े भाग्य से मुझे मिले हैं
ये कुछ -दुर्दिन के क्षण
नेह - कसौटी पर कस डालो
मेरे संयम - साधन
अन्तर की उद्वेग - झार से, मन का कलुष निकारो
मुझको आज निखारो

( २ )

मृग तृष्णा की छलना में भी
आशा कभी न छोड़ूँ
मैं मानव बसने का आदी
तिनके तिनके जोड़ूँ
तुम झंझा की एक झपट से मेरा नीड़ उजाड़ो
मुझको आज निखारो

( ३ )

चला करूँगा मैं इस पथ पर
यों ही सृष्टि - प्रलय तक
मैं अपूर्ण ही भला, पूर्णता
तुम को रहे मुबारक
जीवन को होड़ाहोड़ी में, मैं जीतूँ तुम हारो
मुझको आज निखारो

◆ ◆

## सूरज ढल रहा है

◆ ◆

( १ )

विहग आकुल, नीड़ मुखरित
रागमय लज्जित दिशाएँ
थके हारे श्रमिक सुस्थिर
दिग्वधू लेती बलाएँ
उधर ज्योति विलीन होती, इधर दीपक जल रहा है
सूरज ढल रहा है

( २ )

शान्त होता जा रहा है
विश्व कोलाहल अनियमित
उधर सकुचाता जलज
इस ओर कुमुदिनि विहँस गर्वित
सिन्धु बाहु विशाल फैला, बार बार उछल रहा है
सूरज ढल रहा है

( ३ )

लग रहा है मृत्यु के मुख में
समाया जा रहा जग
साँझ के भूले पथिक, आतुर
सँभल कर धर रहे पग
बाह्य जीवन - शून्य, अन्दर एक जीवन चल रहा है
सूरज ढल रहा है

◆ ◆

## अपने मन से—एक

◆ ◆

तुम मिटा नहीं पाते जिस को जीवन में वह कैसा अभाव

तुम मधुसंचय हित व्यग्र
किन्तु जर्जर मधु के ही छत्ते से
यों उड़ उड़ क्यों फिरते हो
डाली के टूटे पत्ते से

यह किस विषाद का व्यथा-भार मेरे मन कुछ तो बतलाओ
अपनों से भी करता कोई इतना छिपाव, इतना दुराव
तुम मिटा नहीं पाते जिसको जीवन में वह कैसा अभाव

यह हँसी तुम्हारे अधरों की
पाती न छिपा उर का क्रन्दन
जैसे सागर का वेष किए
फिरता मरु का प्यासा कण कण

फिर भी सागर मरु दोनों की छाती में हाहाकार सतत
अन्तर में आकुल बड़वानल आँखों में अविरल अश्रु-स्राव
तुम मिटा नहीं पाते जिस को जीवन में वह कैसा अभाव

मैं यही सोचता रहता हूँ
मेरे मन तुममें धुन न लगे
साधना तुम्हारी विजयी हो
पग-पग पर जीवन ज्योति जगे

ये आशा और निराशा के क्षण आया जाया करते हैं
पथ ही अपना चिर-सङ्गी हो चलना हो जीवन का स्वभाव
तुम मिटा नहीं पाते जिसको जीवन में वह कैसा अभाव

◆ ◆

## अपने मन से—दो

तुम अपने सुख दुख की गाथा अपने तक ही रक्खो सीमित

दो बूँद तुम्हारी देख कहीं
औरों का हृदय न भर आये
तुम जलो, जलन ही जीवन है
पर आँच न औरों को आये
यों नहीं बहाया जाता है
यह बूँद बूँद का धन सञ्चित
तुम अपने सुख दुख की गाथा
अपने तक ही रक्खो सीमित

उन्मादी सागर, व्यथित हृदय ले
औरों का भी ध्यान रहे
शशि - मुख में आकर्षण है
पर नभ का भी कुछ सन्मान रहे
छू जायँ न लहरों की छोरें
बुझ जाँय न यह दीपक अगणित
तुम अपने सुख दुख की गाथा
अपने तक ही रक्खो सीमित

संयम की सिल छाती पर हो
अधरों पर विप्लव - गान लिखे
अन्दर मँडराता रहे धुवाँ
बाहर चिनगारी तक न दिखे
जीवन जीवन का साथी हो
पीड़ा पीड़ित तक हो परिमित
तुम अपने सुख दुख की गाथा
अपने तक ही रक्खो सीमित

## अपने मन से—तीन

• •

( १ )

हिम्मत न हारो ऐ हृदय
यह साधना का देश है

है पथ अँधेरा, शून्य नभ
खोया हृदय, सोया समय
अवसन्न सी सब चेतना
उर में अमित संशय उदय

उलझी लटें, जर्जर वसन
कुछ पूछते से दीन दृग
जैसे थमे स्वर वेणु के—
सहमे खड़े हों मौन मृग

यह हार जीवन की नहीं
आ रा ध ना का वे ष है
हिम्मत न हारो ऐ हृदय
यह साधना का देश है

( २ )

जीवन अबाध प्रवाह है
सुख दुख सुभग दो कूल हैं
आशा निराशा संगिनी
पथ शूल ही मृदुफूल हैं

जलना जगत की ज्योति है
छलना यहाँ की प्रीति है
रुकना यहाँ अपवाद है
चलना यहाँ की रीति है

ये राह के काँटे नहीं
पथ का अमर सन्देश है
हिम्मत न हारो ऐ हृदय
यह साधना का देश है

( ३ )

यह स्वर्ग नर्क विवेचना
मन का अनोखा कृत्य है
है सत्य केवल एक गति
बाक़ी समस्त अनित्य है

हावी यहाँ है मृत्यु पर
निर्माण का प्रहरी अभय
धरना न जानें हो चुकी होती
कभी की सृष्टि लय

रुकना न तुम, जब तक
तुम्हारे श्वास का लवलेश है
हिम्मत न हारो ऐ हृदय
यह साधना का देश है

◆ ◆

## आज सजनि ! सावन के बादल बरस पड़े

• • •

( १ )

बहुत तपी थी धरती
झुलस जाते थे आशा के अंकुर
मृगतृष्णा के मारे
बन बन फिरते थे मन के मृग आतुर

याद नहीं पिछले वर्षों
जीवन में
कभी तपन थी ऐसी
दिन में लपट, रात में
ऊमस, जी की
जलन बनी दावा सी

यदि न बरसते—
तो आकुल नयनों के युग युग से बिछुड़े मेहमान तरसते

और—
न जाने कितनी संचित आशाओं के नव किसलय दल
मुरझा जाते खड़े खड़े
आज सजनि,
सावन के बादल बरस पड़े

( २ )

लुटा सृष्टि का हृदय
लुटेंगी अब विह्वल पतङ्ग की पाँखें

जीवन-दाता, कब से
तुम पर लगी हुई थीं जग की आँखें

तुम बरसे भी खूब
सरस आया
जगती का कोना कोना
जी हल्का कर गया
न जानें किस
विरही का रोना धोना

यदि न बरसते—
तो क्या ताप-तप्त जीवन के ये झुलसे अरमान सरसते

और—
न जाने इस ज्वाला में लय हो जाते कितने मौन
हताश प्रतीक्षित पड़े पड़े
आज सजनि,
सावन के बादल बरस पड़े

( ३ )

जल जातीं आशाएँ
कितनी, जल जाता किसानका जीवन
जिसने बड़ी मनौती
मानी आँखें फाड़ फाड़ साँसें गिन

सूखे खेत पड़े होते
ऊसर को
देते हुए चुनौती
उसकी आँखों की कोरों से
टपका करतीं
नि त्य ओ रौ ती

यदि न बरसते—
तो फिर कैसे रक्त स्वेद करने वाले धरती के पुत्र
किसान हरषते

और—
व्यर्थ ही जल जाते इन जोते गोड़े श्रमसीकर-
मिश्रित खेतों में बीज पड़े
आज सजनि,
सावन के बादल बरस पड़े

( ४ )

मेरे प्रिय परदेश
पड़े क्या कहते होंगे
बूँदों के आघात
हृदय पर सहते होंगे

सोच रहे होंगे
मैं उनके ही ढिंग होती
उनकी बाँह उसीस बना
मु स का ती हो ती

यदि न बरसते—
तो क्या प्रिय के स्वप्न सुनहले सुख-शय्या का ध्यान परसते

और—
सोचते होते क्या क्या, ( हाय ) तुम्हीं पर हम दोनों के
बेसुध लोचन गड़े गड़े
आज सजनि,
सावन के बादल बरस पड़े

◆ ◆

## आभार

•

( १ )

जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

जीवन अस्थिर अनजाने ही
हो जाता पथ पर मेल कहीं
सीमित पग-डग, लम्बी मंज़िल
तय कर लेना कुछ खेल नहीं

दाँए बाँए सुख दुख चलते
सम्मुख चलता पथ का प्रमाद
जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

( २ )

साँसों पर अवलम्बित काया
जब चलते चलते चूर हुई
दो स्नेह-शब्द मिलगए, मिली
नव स्फूर्ति थकावट दूर हुई

पथ के पहचाने छूट गए
पर साथ साथ चल रही याद

जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

( ३ )

जो साथ न मेरा दे पाए
उन से कब सूनी हुई डगर
मैं भी न चलूँ यदि तो भी क्या
राही मर लेकिन राह अमर

इस पथ पर वे ही चलते हैं
जो चलने का पा गए स्वाद
जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

( ४ )

कैसे चल पाता यदि न मिला
होता मुझको आकुल - अन्तर
कैसे चल पाता यदि मिलते
चिर - तृप्ति अमरता - पूर्ण प्रहर

आभारी हूँ मैं उन सब का
दे गए व्यथा का जो प्रसाद
जिस जिससे पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद

◆ ◆

## गीत

•

( १ )

तूफ़ानों की ओर
घुमा दो
नाविक !
निज पतवार !

आज सिन्धु ने विष उगला है
लहरों का यौवन मचला है

आज हृदय में और सिन्धु में
साथ उठा है ज्वार

तूफ़ानों की ओर
घुमा दो
नाविक !
निज पतवार !

( २ )

लहरों के स्वर में कुछ बोलो
इस अंधड़ में साहस तो लो

कभी कभी मिलता जीवन में
तूफ़ानों का प्यार

तूफ़ानों की ओर
घुमा दो

नाविक !
निज पतवार !

( ३ )

यह असीम, निज सीमा जाने
सागर भी तो यह पहिचाने

मिट्टी के पुतले मानव ने
कभी न मानी हार

तूफ़ानों की ओर
घुमा दो
नाविक !
निज पतवार !

( ४ )

सागर की अपनी क्षमता है
पर माँझी भी कब थकता है
जब तक साँसों में स्पन्दन है
उसका हाथ नहीं रुकता है

इसके ही बल पर कर डाले
सातों सागर पार

तूफ़ानों की ओर
घुमा दो
नाविक !
निज पतवार !

◆ ◆

## स्व० कवि - गुरु के प्रति

• • •

आर्य्य - संस्कृति के प्रतीक तुम
युग के संचित ज्ञान
भागीरथ की अमर तपस्या
गौतम के निर्वाण

वीणा - वादिनि की स्वर लहरी
बाल्मीकि के छन्द
उदित अमानिशि में भारत की
तुम राका के चन्द

मौन - मुग्ध सचराचर
विस्मित पथ के दावेदार
पूरब का रवि पूरब में ही
अस्त हुआ इस बार

सब कहते हैं हाय तुम्हारा
आज हुआ अवसान
डूब गया है साथ तुम्हारे
भारत का अभिमान

पराधीन - जीवन की आशा
मृत के जीवन - प्राण
एक तुम्हारे बल पर
चलते थे हम सीना तान

डगमग पग कम्पित कर
वाणी मूक त्रस्त असहाय
तमसावृत पथ पर न सूझता
कोई आज उपाय

रण की विभीषिका से विह्वल
जब जग आठों याम
बना रहे थे तब तुम अपना
'शान्ति निकेतन' धाम

खींचातानी के इस युग में
खूब निभाई टेक
जितनी जीभ प्रश्न उतने ही
उत्तर तुम थे एक

जग जलनिधि में भूले
माँझी के प्रकाश-स्तम्भ
कल जो युग आने वाला है
तुम उस के आरम्भ

बालारुण के स्वर्ण राग सा
दीप्त तुम्हारा वेष
युग युग तक देगा मानव को
चिर-नवीन सन्देश

भ्रान्ति भरे जग के जीवन में
फैली आज अशान्ति
क्या न उसे फिर दे पाएगा
शान्ति-निकेतन शान्ति

◆ ◆

## स्व० 'पढ़ीस' जी की स्मृति में

• • •

( १ )

तुम जन मन के कण्ठ भूमिसुत,
प्रार्थी तरल - गरल के
साथ - साथ जिसकी जिह्वा में
अमिय हलाहल छलके

अनजाने, अनगाए, अनहोनी
की अकथ कथा से
हिमगिरि से गल बहे, तपे तुम
दिनकर से जल जल के

( २ )

मूक रुद्ध वाणी युग युग की,
मुखर हो उठी तुम में
चकित देखने लगे ठगे कवि
वाणी के विभ्रम में

जन - समाज के बीच अंकुरित
दिखा बीज युगकवि का
बोल उठा कवि-हृदय खेत खलिहान
श्र मि क के श्र म में

( ३ )

सन्ध्या के भूले पथिकों की
जीवन - ज्योति जगाए
तुम चुपके से धूमिल नभ के
कोने में उग आए

चमके पर जग की आँखें की
चकाचौंध उल्का से
गिरे टूट तब कहीं नेत्र जग
के ऊपर उठ पाए

( ४ )

ग्राम - हृदय परतन्त्र देश का
कभी बोल पाया यदि
जनता का उच्छ्वसित कलेवर
हृदय खोल पाया यदि

एक आह भर मस्तक पर
रख लेगा इन रत्नों को
रत्नाकर अपनी ही निधियाँ
कभी तोल पाया यदि

◆ ◆

## जीवन और गीत

• •

( १ )

अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

अभी ब्रज - बीथियाँ सूनी
अभी सूना पड़ा मधुबन
अभी झुलसे लता तरुगण
अभी उजड़ा पड़ा उपवन
अभी सावन कहाँ ?
जिसके लिए बन मेघ छाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( २ )

कहाँ मधु से भरी प्याली
कहाँ उमड़ा हुआ यौवन
कहाँ अरमान में आँधी
कहाँ तूफ़ान में जीवन
अभी मधुऋतु कहाँ ?
दिन रात पतझर ही मनाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( )

न पत्थर में कहीं पारस
न कर्षण शक्ति चुम्बक में

कहाँ लौ में जलन बाकी
कहाँ है स्नेह दीपक में
दिवाली भी कहाँ ?
जिसके लिए तन मन जलाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( ४ )

कहाँ है क्षोभ झरनों में
कहाँ सागर में अकुलाहट
कहाँ सरिता में विह्वलता
लिए अभिसार की आहट
कहाँ सङ्गम ? अभी
अविराम प्यासा छटपटाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( ५ )

कहाँ कलियों में है शोखी
कहाँ रस ज्ञान उपलों में
कहाँ सौरभ है साँसों में
कहाँ मकरन्द मुकुलों में
कहाँ मधु ? बन मधुप
जिसके लिए मैं गुनगुनाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( ६ )

कहाँ झंकार वीणा में
गमक तबलों मृदङ्गों में
अभी नवस्फूर्ति ताण्डव की
समा पाई न अङ्गों में

अभी सम ताल - यति-
गति हीन तानें ही सुनाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( ७ )

अभी माँगा न तृष्णा ने
अगम मधुसिन्धु का मन्थन
अभी विष तक पचाने का
उठा उर में न आन्दोलन
न जानें अग्नि
चुम्बन से अभी क्यों जी चुराता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( ८ )

अभी केवल सुना है
कल्पतरु होता है नन्दन में
अभी लाया कहाँ हूँ
कामधेनू जग के आँगन में
अभी तो शून्य में
ही दूध की गङ्गा बहाता हूँ
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

( ९ )

अभी आकुल है कायाकल्प
करने को मही सारी
कहाँ जीवन ? अभी तो
हो रही जीवन की तय्यारी
अभी जीवन कहाँ ?
जिसके लिए मैं गीत गाता हूँ

◆ ◆

## परीक्षा दो

• •

( १ )

बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची

कितनी शताब्दियों बाद
सुनाई पड़ा आज दुन्दुभि का स्वर
हतभाग्य गुलामों ने पाया
फिर हँस हँस मिटने का अवसर

आ गई प्रबल नवस्फूर्ति, रगों का
पानी फिर से खून हुआ
उठ गया झुका मस्तक
दीना-वाणी में भैरवनाद प्रखर

फूँको जय-श्री का शङ्ख आज
बलि की शुभ वेला आ पहुँची
बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची

( २ )

जर्जरित अमाँ का अन्धकार
प्रस्फुटित उषा की अरुण किरण
युगमानव, आज हथेली पर
सर धर कर डालो मरण वरण

युग युग की जन-मन-आकांक्षा
फिर एक बार साकार करो
इस जीर्ण पुरातन जगती का
कर डालो नूतन संस्करण

युग की वाणी बन ललकारो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची
बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची

( ३ )

साम्राज्यवाद का गढ़ विदीर्ण
फ़ासिस्तवाद पर गिरी गाज
अवकाश सोचने का न रहा
बढ़ चलो समर का सजो साज

अपने अतीत की कालिख तो
लोहू की लाली से धो दो
युग युग से बन्दी मानव को
करना है तुम को मुक्त आज

आओ युग-जन युग का ऋण दो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची
बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची

( ४ )

मद - चूर कुल्हाड़ी मार चुके
जो खुद ही अपने पैरों पर

वे लिए किराए के सैनिक
करने आए हैं आज समर

सदियों के अत्याचारी की
अवशेष निशानी तक न रहे
मानवता के अन्तिम रण में
रह जाय न कोई कोर कसर

संगठित आज जन शक्ति प्रबल
बलि की शुभ वेला आ पहुँची
बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची

( ५ )

लो समय ले रहा है करवट
इतिहास ले रहा अँगड़ाई
शोषक वर्गों की आँखों में
अब भी खुमार की जमुहाई

सुध बुध विस्मृत, कर पग कम्पित
सुन रहे खड़े भौचक्के से
जनगढ़ के सिंहद्वार पर जो
बजती नवयुग की शहनाई

बलिदानी ! आज परीक्षा दो
बलि की शुभ वेला आ पहुँची

◆ ◆

## सोवियत् रूसके प्रति

• • •

[ सोवियत - जर्मन युद्ध प्रारम्भ होनेके एक मास पश्चात रचित ]

( १ )

नव - संस्कृति के अग्रदूत हे
पद - दलितों की आश
एक तुम्हारी गति पर अटकी
मानवता की श्वास

( २ )

युग युग की शोषित - जनता के
ओ नव - स्वर्णिम भोर
लगी हुई हैं अगणित आँखें
आज तुम्हारी ओर

( ३ )

स्वस्थ साँस दो - चार ले सके
जिस साए में प्राण,
आज उसी की छाती पर
फिर मचा हुआ घमसान

( ४ )

इधर सँजोए थे मानव ने
सुख समृद्धि के स्वप्न
उधर हो चुका क्षण में
बर्बरता का ताण्डव नग्न

( ५ )

यह संघर्ष विचारों का है
मानव केवल यन्त्र
निर्णय निहित, रहेगा जीवन
मुक्त या कि परतन्त्र

( ६ )

एक एक कर याद आ रहे
वे अपूर्व बलिदान
देकर जिन्हें किया था तुमने
नव - जीवन निर्माण

( ७ )

पर अजेय है आज तुम्हारी
पहले से भी शक्ति
जिसमें मिली विश्व - भर के
दलितों की चिर - अनुरक्ति

( ८ )

अडिग चरण, उन्नत मस्तक
क्या इनक़लाब की चाल
देख तुम्हारा साहस
दुश्मन मौन, त्रस्त, बेहाल

( ९ )

उधर किराए के सैनिक हैं
ध्ये य ही न भ्रि य मा ण
उन्हें सिखा तो दो
कैसे रक्खी जाती है आन

( १० )

अच्छा हुआ परीक्षा आई
लेगी दुनिया जान
इन मज़दूर किसानों का
होता क्या महाप्रयाण

( ११ )

हँसिया और हथौड़ा अब तक
हुआ नहीं पामाल
यह पानी से नहीं
खून से ही था झण्डा लाल

( १२ )

लाल तुम्हारा झण्डा वीरों
लाल तुम्हारी सैन्य
लाल तुम्हारा जीवन
तुमको क्या चिन्ता, क्या दैन्य

( १३ )

एक रक्त की बूँद तुम्हारी
लाखों का विश्वास
कभी हुआ भी है ? या होगा ?
न्याय, सत्य का ह्रास

( १४ )

यह हिंसक भेड़िए उड़ाने
चले सिंह का द्वार
क्षयरोगी साम्राज्यवाद का
शेष यहीं उपचार

( १५ )

अबकी सबक सीखले दुनिया
फिर न उठाए आँख
यह वे जिनकी मुई खाल से
लौह हुआ था राख

( १६ )

कोना - कोना दलित विश्व का
आज तुम्हारे साथ
विजय पताका लिए बढ़ेगा
दिए हाथ में हाथ

( १७ )

पग पग पर देना ही होगा
मानवता का मोल
यह अन्तिम आहुति है
फिर हम मिल लेंगे जी खोल

( १८ )

तुम थे एक और बैरी थे
सौ - सौ सहित हुलास
बाल न बाँका हुआ
कहेगा यही सदा इतिहास

◆ ◆

## मॉस्को अबभी दूर है

• • •

( १ )

घनन घनन घन बादल गरजे
घहर घहर घर तोपें
ज्वालामुखी सजीव टैंक बन
जब धरती पर कोपे

हिली धरा, हिल गया आसमाँ
हिला विश्व का कोना
अंतरिक्ष से प्रतिध्वनि आई
ऐसा हुआ न होना

रातों - रात बढ़े उलूक - गण
रही सृष्टि सब सोती
वरना दो सौ मील ज़मीं
आसानी से सर होती

आज वही बाईस जून फिर
घूमघाम कर आई
जिस दिन ज़ुल्मी जर्मन - दल की
शुरू हुई पहुनाई

जगे वीर, जागी वसुन्धरा
जागी युग की ज्वाला
यहाँ लुटेरे फ़ासिस्तों को
पड़ा मौत से पाला

जन-जन जागे, कण-कण जागा
जागा लाल सितारा

चली लालसेना लहराती
लाल रक्त की धारा

कौन लड़ेगा ? कौन बढ़ेगा ?
कौन साहसी शूर है ?
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मॉस्को अब भी दूर है

( २ )

यहीं नाज़ियों ने पहचाना
कहते किसे समर नर
एक एक पग पर लेने के
देने पड़े यहाँ पर

यहाँ पाचवाँ दस्ता क़ायम
करना हुआ असम्भव
यहाँ हिटलरी मूछ पुँछ गई
गया विजय का गौरव

यहाँ नहीं सोने चाँदी पर
दास ख़रीदे जाते
यहाँ न मेहनतकश की रोटी
छीन और खा पाते

यहाँ न भूखे नङ्गे जर्जर
वसन दिखाई पड़ते
यहाँ दूध के बिना न बच्चे
पत्तों से झर पड़ते

यह दलितों की तीर्थ - भूमि है
युग का प्रबल तक़ाज़ा
सर्व - प्रथम साम्राज्यवाद का
निकला यहीं जनाज़ा

यहाँ सङ्गठित जन - जीवन की
बोला करती तूती
जिसने युग की बर्बरता को
दे दी आज चुनौती

इस जन - गढ़ में जो जो आता
हो ता चू र ग़ रू र है
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मॉस्को अ ब भी दू र है

( ३ )

दुनिया ने देखा क्या ऐसा
जङ्ग कभी लासानी
एक एक सोवियत् सैनिक है
सवा-लाख का सानी

मानवता की बलिवेदी पर
शीश निछावर जितने
हुए कभी क्या कहीं आज तक
हँस-हँस कर बलि इतने

यहाँ मजूर किसानों का भी
खूब मिल गया जोड़ा
जो ले हाथ चले हहराते
हँसिया और हथौड़ा

जिसने चूँ की वहीं गई
हँसिया से गरदन नापी
और ह थौ ड़े ने ह ड्डी-
हड्डी दुश्मन की चापी

अभिमानी साम्राज्यवाद ने
पग पग मुँह की खाई

सब ने कहा आज देखी
जनता की प्रथम लड़ाई

यहाँ हार को जगह नहीं है
विजय, विजय है केवल
जनसत्ता में जन-जन होता
अभय अभय ही केवल

यहाँ काल से भी लोहा
लेने का दम भरपूर है
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मॉस्को अब भी दूर है

( ४ )

दो सौ वर्षों की औद्योगिक
उन्नति काम न आई
बीस वर्ष के पट्ठे ने जब
निज तलवार उठाई

लाशों से पट गई धरित्री
बहीं खून की नदियाँ
कभी सोवियत् रूस लड़ा था
याद करेंगी सदियाँ

फूँके शहर, फूँक दीं अपनी
नगरी बनी बनाई
पर दुश्मन को पग भर साया
तलक नहीं मिल पाई

बच्चे, बूढ़े, युवा आन पर
जान लुटाने आए

कहें कहाँ तक यहाँ न पीछे
रहीं वीर ललनाए

बोले बच्चे आओ मिलकर
फिर वह गाना गाओ
दुनिया भर के मज़लूमों अब
आज एक हो जाओ

हम मेहनत-कश हमें कौन सी
ताक़त रोक सकेगी
अच्छा हुआ ढहे सब खँडहर
दुनिया नई बसेगी

लाल निशान, लाल सैनिक
आँखों में लाल सुरूर है
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मॉस्को अब भी दूर है

(५)

इधर गड़गड़ाई मैशीनगन
उधर आसमाँ तड़पा
भिड़े टैंक से टैंक दानवी
क़हर हो गया बरपा

संगीनों से संगीनें तोपों से
गोले बाज़ी
साम्यवाद फ़ासिस्तवाद में
लगी खून की बाज़ी

बच्चों के चिथड़े चिथड़े
सड़कों पर पड़े दिखाई

देख जिन्हें माता की ममता
आँखों में भर आई

पर वे हँस हँस लगीं भेजने
अपने पूत सलोने
जिससे जग में यह समता का
स्वप्न न पाए खोने

क़दम क़दम पर अगणित शीशों
ने फिर भेंट चढ़ाई
एक एक नारी रण - चण्डी
का स्वरूप धर आई

बलिवेदी पर नर - नारीगण
लगे होड़ सी करने
मानवता के लिए आज
पहले दो मुझको मरने

दिग्गज काँपे, दुनिया दहली
दहला दुश्मन क्रूर है
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मॉस्को अब भी दूर है

( ६ )

दिग - दिगन्त डोले धरती
भौचक्की सी थर्राई
दुनिया - भर के मज़लूमों ने
जब यह हाँक लगाई

बढ़े चलो मेरे दीवानों
हम भी पीछे आए
आज नया इतिहास बना दो
दुश्मन भाग न जाए

तुमको मौन देख मन में क्या
समझा था अभिमानी
दस हफ़्ते में ही कर लेगा
जनता की क़ुरबानी

और साथ में यह छोटे-
मोटे कुत्ते भी दौड़े
जिनने जीवन भर केवल
जूठे ही हाड़ चिचोड़े

इन्हें पता क्या इन के घर में
आग सुलगने वाली
इस धोखे की टट्टी से कब-
तक होगी रखवाली

कोने कोने में सुलगेगी
इन्क़लाब की ज्वाला
यही कहेंगे बड़ी भूल की
पड़ा विकट से पाला

आओ आगे बढ़ो अन्त में
अपनी विजय ज़रूर है
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मॉस्को अब भी दूर है

(७)

दुनिया के कोने-कोने में
आज लगा दो फेरी
यह जनता का युद्ध बज रही
जनगढ़ में रण-भेरी

आओ दुनिया के मज़लूमों
आओ हाथ बटाओ

आज नहीं तो कभी नहीं फिर
दो दो हाथ दिखाओ

लाल-सैनिको ने ही कर दी
इनकी चकना-चूरी
जो कुछ बची खुची हो वह
पूर्णाहुति कर दो पूरी

यह समझे थे एक अकेले
को घेरेंगे जाकर
और जीत लेंगे आनन फ़ानन
में ही धमका कर

पता नहीं दुनिया-भर के
दलित वर्ग का राजा
कुछ है तब तो बजा रहा है
नई सृष्टि का बाजा

आओ इनका गर्व तोड़ दो
कर दो पानी पानी
अब अगली बाईस जून तक
रहे न शेष निशानी

यह भाड़े के सैनिक लड़ने
का क्या इन्हें शऊर है
दस हफ़्ते दस साल बन गए
मॉस्को अब भी दूर है

◇ ◆

## स्तालिनग्रेद

• •

महायुद्ध के कीर्ति स्तम्भ बन
अड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद
वीर - भोग्या वसुन्धरा पर
खड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद

( १ )

पग्ववारों में जहाँ झुक गए
साम्राज्यों के उन्नत शीश
वहीं आततायी की खूनी
डाढ़े तुमने डालीं पीस

डटे रहो दुनिया - भर में है
आज तुम्हारा ग़ालिब रुवाब
घूँसे से घूँसे का, थप्पड़ से
थप्पड़ का दिया जवाब

जनता के दुश्मन की
सङ्गीनों से छाती डाली छेद
वीर - भोग्या वसुन्धरा पर
खड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद

( २ )

तुमने दिखा दिया दुनिया को
क्या स्वतन्त्रता की अनुरक्ति

तुमने दिखा दिया दुनिया को
क्या होती जनता की शक्ति

तुमने मिटा दिया शोषक
वर्गों का सारा गर्व हुलास
तुमने बढ़ा दिया मज़लूमों
की दुनिया का दृढ़ विश्वास

कौन अन्त में विजयी होगा
तुमने खोल दिया सब भेद
वीर - भोग्या वसुन्धरा पर
खड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद

( ३ )

जिस दिन दिया तुम्हारे घर में
फ़ासिस्तों ने डाका डाल
गली-गली में निर्मित कर दी
तुमने छाती की दीवाल

बढ़े दुधमुँहे बच्चे लेकर
हाथों में नङ्गी करवाल
माँ की कोख गर्व से बोली
'धन्य, धन्य, माई के लाल'

नवयुग के निश्चल प्रहरी से
बलिदानी श्रमिकों के स्वेद
वीर - भोग्या वसुन्धरा पर
खड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद

( ४ )

पढ़ा सभी ने नर नारी मिल
बढ़े दिखाने दो दो हाथ

ये चिर-जीवन सङ्गी हैं इस
तरह निभाया जाता साथ

यही स्नेह, यह आत्मविसर्जन
यह नर - नारी का विश्वास
मिटे, किन्तु मिटते मिटते भी
बना गए युग का इतिहास

इतने पर भी विश्व न समझा
साम्यवाद क्या ? तो है खेद
वीर - भोग्या वसुन्धरा पर
खड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद

( ५ )

टूटे दुर्ग, ढहीं दीवालें
पर न मिटी वीरों की आन
पीछे को पग कैसा ? मिटना
मातृभूमि हित जिनकी शान

क़दम क़दम पर, इञ्च इञ्च पर,
रक्त - मांस को अपने तोल
देखे दुनिया चुका रहे ये
बूँद बूँद से युग का मोल

रक्तसिंचिता लाल पताका
फहरा रही गगन-तल भेद
वीर - भोग्या वसुन्धरा पर
खड़े रहो तुम स्तालिनग्रेद

◆ ◆

## चली जारही है बढ़ी लाल सेना

• • •

( १ )

तना वक्ष, ज्वालामुखी श्वास में भर
लुटेरों की दुनिया पै बन के बवंडर
समय को डगर पर प्रलय के क़दम धर
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

( २ )

प्रलय के, सृजन के सभी साज सजकर
ढहे खँडहरों का क्षणिक मोह तजकर
विजय वेष, आँखें लगी रक्तध्वज पर
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

( ३ )

युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती
ज़हर की लहर सी लहरती मचलती
अँधेरी निशा में मशालों सी जलती
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

( ४ )

कुहू की निशा में उदित पूर्णिमा सी
जिधर डग, उधर फट गई कालिमा सी

क्षितिज पै उषा की तरुण लालिमा सी
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

( ५ )

चरण - चिह्न में छोड़ती युग - निशानी
नया दिन, नया वेष, नूतन कहानी
चले झूमती ज्यों उमड़ती जवानी
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

( ६ )

हुई मौन गिरजों की टन टन पुकारें
कँपी मन्दिरों की पुराना दिवारें
ठगी सी खड़ी मसजिदों की मिनारें
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

( ७ )

गरजती कभी बिजलियों सी चमकती
समुन्दर उबलते, धरित्री धँसकती
गरम ख़ून से लाल इतिहास लिखती
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

( ८ )

लगे गूँजने शोषितों के तराने
'चले आज हम स्वप्न सच्चे बनाने'
रुकेगी ?.रुकेगी ? कहाँ, कौन जाने ?
चली जारही है बढ़ी लाल सेना

◆ ◆

## कलकत्तेका अकाल—१९४३

• • •

( १ )

हाय, सुन रहे कलकत्ते में
फैला घोर अकाल
काल - गाल में समा गए
कितने माई के लाल

( २ )

गलियों सड़कों फुटपाथों पर
क्षुधा - ग्रस्त बेहाल
जगह जगह पर तड़प रहे हैं
मानव के कंकाल

( ३ )

आँखें एक एक दाने को
स्वप्न देखतीं मौन
हृदय पूछता दुर्दिन के दिन
लाने वाला कौन

( ४ )

फटी फटी आँखों से सब को
देख रहे अनिमेष
ये पूँजीवादी समाज के
जुल्मों के अवशेष

( ५ )

सूखी लकड़ी से हाथों को
लाकर मुँह के पास
बच्चे बूढ़े तोड़ रहे हैं
अपनी अन्तिम साँस

( ६ )

सूख गए आँखों के आँसू
रुद्ध कण्ठ के द्वार
एक एक पसली बतलाती
जी की व्यथा अपार

( ७ )

पेट पीठ का पता नहीं है
रहा न तन में चाम
सुबह कहाँ ? जिनके जीवन में
रही शाम ही शाम

( ८ )

पैदा होने से मरने तक
एक भूख की बात
कभी चैन से सोते ऐसी
कहाँ एक भी रात

( ९ )

निपट दुधमुँहे बच्चे सूखी
छाती से आसक्त
चूस रहे माँ के जीवन का
बचा बचाया रक्त

( १० )

जिस गोदी में जीवन पाया
पाया लाड़ - दुलार
आज उसी में बिना कफ़न के
सोए शिशु सुकुमार

( ११ )

कैसे सहती होगी माँ की
छाती यह सब हाय
देख कलेजे के टुकड़ों को
टूक - टूक निरुपाय

( १२ )

तरस तरस कर प्राण दे गए
पथ की मिट्टी चूम
किसी राष्ट्र की आशा थे
इनको क्या मालूम

( १३ )

इनके लिए कभी उठी थी
किसी कोख में पीर
इनके लिए कभी छलका था
किसी आँख में नीर

( १४ )

इनकी भी माता माता थी
दिल में थे अरमान
इनके भी बच्चे बच्चे थे
ये भी थे इन्सान

( १५ )

ये भी वैसे ही मानव थे
जिनके सुख के ठौर
अब भी चलते होंगे जिनके
घर मदिरा के दौर

( १६ )

उसी सड़क पर नीचे जिसके
भीषण हाहाकार
ऊपर होते होंगे प्रतिदिन
नए नए शृङ्गार

( १७ )

विधवाएँ चिल्लातीं रोतीं
माताएँ जी खोल
कर्ण बधिर से करते होंगे
वे नारी का मोल

( १८ )

आह समझ सकता कोई यदि
इन आहों का अर्थ
निश्चय ही मातृत्व न जाता
कभी इस तरह व्यर्थ

( १९ )

कहीं देश के लिए मिला
होता इतना बलिदान
कभी किसी दिन करती भारत
माँ इन पर अभिमान

( २० )

बुड्ढे की जीवन की लकड़ी
माँ की सञ्चित आश
दो दो रुपयों में बिकते हैं
ये दासों के दास

( २१ )

आज कहाँ नारी की लज्जा ?
धर्म कर्म का जाल
चौराहे पर माताएँ
जनती हैं अपने लाल

( २२ )

और वहीं से आता जाता
होगा जन - समुदाय
सहृदय समवेदना - भरे
शब्दों से मन समझाय

( २३ )

डाल दया की दृष्टि, बताकर
जीवन का अभिशाप
धर्म - धुरीणों के शब्दों में
पूर्व - जन्म के पाप

( २४ )

खड़ी सामने हँसती होगी
अट्टालिका विशाल
बासी मछली - भात कभी
कुत्तों को देती डाल

( २५ )

झपट लिपटते होंगे नर पशु
लगा पेट की होड़
इस युग में मानव कुत्ते का
खूब मिला है जोड़

( २६ )

कुत्ते के पञ्जों से आहत
जर्जर तन बलहीन
श्वान झपट ले जाता होगा
मुँह की रोटी छीन

( २७ )

छोड़ एक निश्वास सड़कपर
शिथिल थकित मृतप्राण
आँसू बरसा कर रह जाता
होगा वह हैरान.

( २८ )

बीन सड़ा मैला नाली का
मुँह में लेना डाल
भूख ? भूख ने मिटा दिया है
भले बुरे का ख्याल

( २९ )

ये जीवित शव भी मानव हैं
मूक त्रस्त पामाल
चील्ह नोचती आँखें गीदड़
खाते जीवित खाल

( ३० )

हन्त, हमारे ही भाई ये
दीन, हीन, लाचार
यों सड़कों पर सड़ते होती
यदि हमारी सरकार

( ३१ )

हाँ अपनी सरकार देश की
जनता की सरकार
मज़दूरों की मज़लूमों की
भूखों की सरकार

( ३२ )

तो क्या कभी मुनाफ़ाखोरों
की यह चलती चाल
मरते लोग सड़ा करता यों
कोठारों में माल

( ३३ )

हड्डी के ढाँचों पर गिनते
रुपयों के अंबार
बच्चों की लाशों पर करते
पूँजी का व्यापार

( ३४ )

पूँजीवादी युग ने साजा
है कुछ ऐसा साज
घर बाहर सब जगह लुटेरों
का दिखता है राज

( ३५ )

लानत है उस हीन राष्ट्र पर
जो इस तरह अनाथ
बैठा देखा करे तमाशा
धरे हाथ पर हाथ

( ३६ )

जाति धर्म के भेद कहाँ सब
बँधे भूख की डोर
हिन्दू मुस्लिम खींच रहे पर
अपनी - अपनी ओर

( ३७ )

कौन कलंकित करने वाली
कैसी यह सन्तान
क्या 'गणेश' जी का निष्फलही
गया अमर बलिदान

( ३८ )

देशवासियों! तुम्हें शपथ उन
माँ बहनों की आज
जिनके स्नेह लाड़ले टुकड़े-
टुकड़े को मुहताज

( ३९ )

तुम्हें शपथ माँ के अंचल की
शपथ दूध की आज
तुम्हें तुम्हारी शपथ, शपथ है
गरम खून की आज

( ४० )

बिना अन्न दम तोड़ रहे जो
खुले आम बाज़ार
कलकत्ते की उन लाशों की
शपथें तुम्हें हज़ार

( ४१ )

मानवता की शपथ ले रहे
हैं यह कह कर आज
एक एक दाने का बदला
ले लेंगे मय ब्याज

( ४२ )

उलट तुम्हारी सड़ी व्यवस्था
डालेंगे वह नींव
फिर न बिसूर बिसूर कर मरे
नर तन-धारी जीव

( ४३ )

वर्गभेद शोषक शोषित के
फिर न पड़ेंगे देख
आगे के कवि को न पड़ेगा
लिखना ऐसा लेख

## फिर भी मेरा विश्वास अटल

◆ ◆ ◆

आँधी आई, तूफ़ान उठा
काँपे दिग्गज, दहला अम्बर
मेरे तरु की डाली टूटी
नीड़ों के तिनके गए बिखर

भय क्या, जब तक यह नीला नभ
जब तक मेरे डैनों में बल
फिर भी मेरा विश्वास अटल

डाँड़ों का संबल इष्ट नहीं
नौका की क्यों हो मुझे फ़िकर
जब तैर गया इतना सागर
अपनी छाती पर पत्थर धर

पुतली में बड़वानल जाग्रत
बाहों से लिपटी लहर चपल
फिर भी मेरा विश्वास अटल

मुर्दों में प्राण फूँकने को
मेरी वाणी विह्वल आतुर
पत्थर सी छाती फोड़ रहे
फिर आज उमङ्गों के निर्झर

जिह्वा पर ताला हो अथवा
छाती पर वज्र प्रहार प्रबल
फिर भी मेरा विश्वास अटल

◆ ◆

## गानेको अभी अवशेष

• • •

( १ )

गा डाले विरह आख्यान
गा डाले मिलन मधुगान
कुछ अभिशाप कुछ वरदान

फिर भी हृदय मेरा व्यग्र
फिर भी साध मेरी शेष
गाने को अभी अवशेष

( २ )

•

पल में तृप्ति पल में प्यास
पल में अश्रु पल में हास
पल सन्देह पल विश्वास

गा डाले अपरिचित किन्तु
फिर भी रह गया यह देश
गाने को अभी अवशेष

( ३ )

आहों में ज्वलित अङ्गार
उर में सिन्धु के शत ज्वार
वाणी में प्रभंजनभार

सावन और भादों शून्य
पलकों में रचे अनिमेष
गाने को अभी अवशेष

( ४ )

हाथों में लिए मृदु वीन
अपने गान में तल्लीन
मैं युग युग फिरा गतिहीन

रचता नित नया सङ्गीत
धरता नित निराले वेष
गाने को अभी अवशेष

( ५ )

अंबुधि में भरे हैं गान
अम्बर में भरे हैं गान
धरती में भरे हैं गान
कन कन में भरे हैं गान
जन जन में भरे हैं गान

कैसे मौन हो फिर हाय
मेरी श्वास का सन्देश
गाने को अभी अवशेष

◆ ◆